

भगवद्विग्रह की प्राप्ति

सन्त सद्गुरु स्वामी श्रीअविनाशचन्द्रजी से विदा होकर मीरपुर में आने के बाद श्रीस्वामीजी के हृदय में एक और पीड़ा का अनुभव होने लगा । भगवान् के लिये, भगवत्प्रेम के लिये व्याकुलता तो पहले ही थी, खाना, पीना, पहनना-कुछ भी नहीं रुचता । अब सन्त सद्गुरु से अलग रहने की विरह-वेदना और भी जुड़ गयी । प्रायः ऊपर ही रहते, नींद भी बहुत कम लेते । कुछ थोड़े से चने अथवा दाल का पानी ले लेते । दिन-रात विरह वेदना से तड़फते रहते । इन्हीं दिनों श्रीस्वामीजी ने एक स्वप्न देखा । स्वप्न में सन्त सद्गुरु श्रीअविनाशचन्द्रजी महाराज प्रकट हुए और उन्होंने आज्ञा की कि जहाँ तुम प्रतिदिन स्नान करते हो वहाँ बेर के नीचे खोदने से तुम्हें अभीष्ट की प्राप्ति होगी । जागने पर श्रीस्वामीजी ने बड़े उल्लास के साथ वहाँ की धरती खोदी तो एक दिव्य सोने की डिबिया निकली । उसमें एक बहुत ही विलक्षण भोजपत्र पर श्रीजनकनन्दिनी सतीगुरु श्रीस्वामिनीजी की मूर्ति अंकित थी । उनके दर्शन से भक्त कोकिलजी का रोम-रोम प्रफुल्लित हो गया । परम हर्षित होकर सिरपर धारण किया । श्रीस्वामीजी छोटी-सी कुटिया में छोटे से पालने पर छोटी-सी श्रीजनकनन्दिनी को विराजमान करके हौले-हौले झोटे देने लगे । जब कहीं बाहर जाते जब इन्हें अपने सिरपर धारण करते । इस प्रकार सन्त-सद्गुरु के वियोग का दुःख कुछ शान्त हो गया; परन्तु भगवत्प्राप्ति व्याकुलता और भी दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगी ।

वालियों के कमलमुखों से, कस्तुरी की सुगन्धि वालों से, अरुण पंककर सुरभित कम्प सहित स्तन श्रृंगो के आधार से प्रफुल्लित होने वालों से चलायमान नेत्ररूपी भँवरों वालों से, भरे हुए झरोखे वैकुण्ठ के महा पद्मों से भरपूर हुए के समान भये ॥३७॥

श्रीमैथली राघव के अगाध सनेह रूप को आँखों से पीवत भई प्रौढ़ा स्त्रियों ने मुग्धा होकर और इन्द्रियों का सुख न देखा, क्योंकि उनके और इन्द्रियों की वृत्ति सर्व प्रकार आँखों में आ गयी थी ।

तब एक सखी सद्भुत आनन्द में विह्वल होकर, रोम-रोम खिलाकर, नेत्रों से सनेहाश्रू बहाकर सामीप्य सखियों के टोले से, सर्वांग का बल रसना में राखकर कहने लगी ॥३८॥

आज जैसा मध्याह्न समय ब्रह्माण्ड के उत्पत्ति से लेकर कभी नहीं हुआ होगा ? सखी ! दूर से ही पृथ्वीनन्दिनी के चरणों से सुरभित विविधि वायू मनस्वी समाज को सलोपासुख प्रदान करती हैं । यह क्या ? गगन से प्रेम का सावन वर्ष रहा है । दूसरी सखी बोली-

अनुगतिमलिवृन्दै गण्डभितीः विहायः ।

सुरभिसुर विमुक्तं पुष्प वृष्टि पपातः ॥

अई सखी ! सुगन्धित फूल मालाओं की वर्षा ऊपर देवमण्डल कर छोड़ी हुई, लोकपालों के हाथियों की फटी कनपटी त्यागकर, मद भरे भौरों के पंखों से खिड़त है शोभा जाकी ऐसे पद्मीयकमल, परशुधर गर्व प्रहारी दूलह रामचन्द्रकुमार पर श्रावण की मधुर बून्दों अथवा चैत्रकी हिमउपल वर्षा की न्याई सुफेद पुष्पों मालाएँ अखण्ड धारा से गिरत है व शोभित होत है ॥३९॥ तीसरी सखी बोली

जल निधि मनु रूपं आलि गंगेव पार्थिवि ।

शशिनमुपगतेयं चन्द्रका मेघ मुक्तं ॥

और आली ! जलनिधि समुद्र तुल्य कौशल्यानन्द कुमार के योग्य